पाखी

सृजन की उड़ान

जुलाई-अगस्त 2024
मूल्य : ₹ 50

वर्ष : 16, अंक 10-11, जुलाई-अगस्त (संयुक्तांक) 2024

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी
बी-107, सेक्टर-63, नोएडा-201309
गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 0120-4330755
editor@pakhi.in
shailey1961@gmail.com
pakhimagazine@gmail.com
www.facebook.com/pakhimagazine
Web portal : www.pakhi.in

प्रति	:	रु. 50.00
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 1000.00
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 10000.00

भुगतान इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी के नाम से किया जाए।
भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं :
बैंक : UNION BANK
खाता संख्या : 520101255568785
IFSC : UBIN **0905011**
बैंक शाखा : जी-28, सेक्टर-18, नोएडा-201301
उत्तर प्रदेश

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय।

स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिएटिव सोसाइटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिंटर्स प्रा.लि. जी-39, नोएडा से मुद्रित एवं बी-107, सेक्टर 63, नोएडा से प्रकाशित।

संपादक पूर्णतः अवैतनिक

संपादक
शैलेय

महाप्रबंधक
अमित कुमार

शब्द संयोजन
उषा ठाकुर

संपादकीय/शैलेय — यहां एक भविष्य है — 3

मतभेद

बालक बुद्धि बनाम... : मदन कश्यप 5

खंड-1 : कहानियां

परिंदों का लौटना : उर्मिला शिरीष 6
पितृ दोष : गोविंद उपाध्याय 14
वोट का टेंडर : राजेंद्र राजन 19
चुटकी भर माटी : उर्मिला शुक्ल 25
राष्ट्रपति भवन के कंकड़ : वंदना गुप्ता 34
एक दिन का सफर : कल्पना मनोरमा 40
मैं गुलमुहर : सुदेश कुमार मेहर 46

खंड-2 : कविताएं

केशव तिवारी की तीन कविताएं 51
सदानंद शाही की कविता 53
किरण अग्रवाल की कविता 57
प्रतिभा चौहान की पांच कविताएं 59
खेमकरण सोमन की कुछ कविताएं 61
अखिलेश सिंह की छह कविताएं 63
पूजा यादव की चार कविताएं 65

खंड-3

संस्मरण अंश/आलेख/सिनेमा

रोहित मेरी समस्या नहीं... : सूर्यबाला 67
भयावहता के पार : रुचि बहुगुणा उनियाल 72
कथा-कहन की थियरी:... : पवन माथुर 76
एक संघर्षशील निर्धन... : अंजु शर्मा 83

खंड-4 : स्थाई स्तंभ

कल्पित कथन

सुरजीत पातर : एक... : कृष्ण कल्पित 85

देख कबीरा रोया

गोदी मीडिया की... : मुकेश कुमार 88

प्रति-संसार

उर्दू शायरी को महज... : अर्पण कुमार 89

समकालीन कहानी:चुनौती... : पंकज शर्मा 92

खंड-5 : मूल्यांकन

अथ कथा बजरंग बली:... : अवधेश प्रीत 96
कुछ बातें दिनकर की : जितेंद्र श्रीवास्तव 99
उदासी और सादापोशी की...: कमलेश वर्मा 101
आत्महंता राजतंत्र के... : मदन मोहन पांडेय 104
मानव जीवन : दुख की... : बिभा रानी 106

खंड-6 : ....

खबरनामा

मां और प्रकृति से ही... : उषा ठाकुर 111

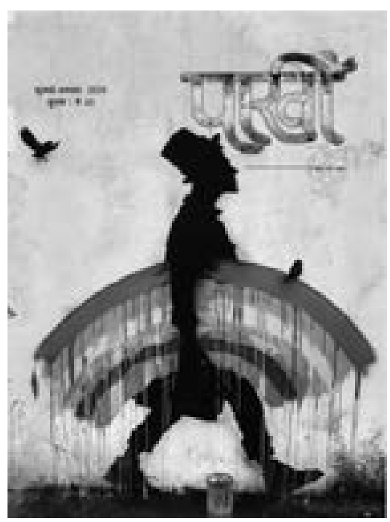

आवरण परिकल्पना : जनार्दन कुमार सिंह
रेखाचित्र : मार्टिन जॉन

मेरी बात / शैलेय

यहां एक भविष्य है

बाजार, युद्ध और उपभोक्तावाद का दलदल जैसे चारों ओर पसरा नजर आता है और इसमें उग रहे हैं तरह-तरह के प्रतिगामी विचार। नई पीढ़ी को सिखाया जा रहा है कि सिर्फ अपने लिए जीना और हर कीमत पर यथास्थिति से 'एडजस्ट' करना ही बुद्धिमानी है।

मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। यानी मनुष्यता ही सर्वोच्च जीवन-मूल्य है। राजनीति हो, अर्थनीति हो, वर्गों और जातियों का द्वंद्व हो या राष्ट्रों के बीच संघर्ष समन्वय, मानव सभ्यता का इतिहास कदम-कदम पर इस बात की तस्दीक करता है कि ये सब कुछ श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों (सत्य, अहिंसा, पारस्परिक सहयोग और सामूहिकता) की स्थापना के लिए हुए संघर्षों का परिणाम है। यह समाज की सहस्राब्दियों में अर्जित ताकत है कि बड़ी से बड़ी त्रासदियों के बावजूद ये मूल्य बचे रहते हैं और पल्लवित-पुष्पित होते रहते हैं। प्राकृतिक आपदाएं हों कि स्वयं मानवजन्य आपदाएं-इन्हें मार नहीं पातीं।

हमारी दुनिया दो-दो विश्वयुद्धों का महाशोक भुगत चुकी है। दूसरे विश्वयुद्ध में करोड़ों मनुष्यों के संहार और हिरोशिमा-नागासाकी के घावों के चिह्न अब भी मानव जाति के शरीर पर हैं। क्या कारण है कि हमारी दुनिया युद्धों से बाहर नहीं निकल पा रही है। ताजा उदाहरण के रूप में हम रूस और यूक्रेन तथा इजराइल और फिलिस्तीन के बीच घमासान को देख सकते हैं। पिछली सदी के एक महान समाजविज्ञानी ने कहा था कि जब तक राजसत्ताओं में लोभ-लालच बना रहेगा, पूंजी और मुनाफे की हवस रहेगी, तब तक युद्धों की संभावनाएं भी बची रहेंगी। उनका कहन इस सदी में भी सच सिद्ध हो रहा है। कहा तो यह भी जाता रहा है कि अब कोई महाशक्ति अब किसी कमजोर देश पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं कर सकती, लेकिन अफगानिस्तान, इराक फिलिस्तीन और यूक्रेन के उदाहरणों ने इसे आपवादिक रूप से गलत सिद्ध कर दिया। क्या सचमुच बाजार और मुनाफे की प्रतिस्पर्धा के चलते दुनिया का एक होना असंभव है?

क्या दुनिया का राजशक्तियों को धन, जमीन और वर्चस्व के अलावा और कुछ नजर नहीं आ रहा?

क्या उन्होंने कोरोना जैसी वैश्विक महामारियों से भी कुछ नहीं सीखा?

नकारात्मक रूप से ही सही उसने सारी दुनिया को उसकी मारक ताकत के खिलाफ एकजुट तो कर ही दिया था, लेकिन लगता है मानव जाति पर हुए इस ताकतवर चोट और अदृश्य आक्रमण को भुला दिया गया है। पहले की ही तरह फिर बाजार, युद्ध और उपभोक्तावाद का दलदल चारों ओर पसरा नजर आता है। 'भूमंडलीकरण', 'वैश्वीकरण', 'विश्वग्राम' जैसे शब्दों पर चढ़ा मानवीय अर्थों का मुलम्मा पूरी तरह उतर चुका है। ताकतवर राष्ट्रों की अपने से कमजोर देशों पर, ताकतवर वर्गों की कमजोर वर्गों पर, ताकतवर जातियों की कमजोर जातियों पर खुली दबंगई के उदाहरण आए दिन सुनने को मिल ही जाते हैं।

सूचनाओं का तो जैसे पिछले तीन दशकों से भरपूर अहंकारी और आतंककारी किस्म का विस्फोट हुआ है। संसार की अधिकाधिक सूचनाओं से लदे रहने को मानो ज्ञान व सुसंस्कृत-सुपठित होने का पर्याय माना जाने लगा है। ऐसे दिमागों में चाहे इतिहास, समाज, संस्कृति साहित्य और विज्ञान के विश्लेषण की क्षमता शून्य के बराबर हो। अखबारों के पृष्ठों पर रचनात्मक साहित्य सिकुड़ रहा है। हजारों साल से सहेजी गई सैकड़ों भाषाएं जो विभिन्न समाजों की ज्ञान प्रणालियां भी थीं, विलुप्त हो चुकी हैं। अभिव्यक्ति की आजादी पर राजसत्ताएं नए-नए बहानों से अंकुश लगा रही हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी साहित्यकार और आलोचक हावर्ड फास्ट ने कभी लिखा था-कि जब पूंजीवादी सभ्यता के पोषक लोकतंत्र जनता की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाते तो वे फासीवादी निजाम में बदल जाते हैं। आज हम लगभग दुनियाभर के पैमाने पर फास्ट की बात को सच होता हुआ देख रहे हैं। न्याय, बराबरी और भाईचारे की लोकतांत्रिक धारणाएं तो दूर रहीं, समाजशास्त्री-अर्थशास्त्री कीन्स की 'कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा तक को हाशिए पर किया जा रहा है। लगभग सभी देशों में सिलसिलेवार श्रमिकों-कर्मचारियों की सुविधाओं पर कटौती जारी है।

...जैसे ठहरा हुआ पानी सड़ांध मारने लगता है ठीक वैसे ही राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्थाएं तरह-तरह के प्रतिगामी विचारों को जन्म दे रही हैं। इतिहास के अंत की घोषणा तो चार दशक पहले अमेरिका में ही फ्रांसिस फुकोयामा कर चुके थे। अब उत्तर संरचनावाद-अस्तित्ववाद, पूंजीवादी अराजकता और

व्यक्तिवाद का कॉकटेल-दर्शन विचारों के क्षेत्र में सुनियोजित तरीके से फैलाया जा रहा है। नई पीढ़ी को सिखाया जा रहा है कि सिर्फ अपने लिए जीना और हम कीमत पर यथास्थिति से 'एडजस्ट' करना ही बुद्धिमानी है।

सामाजिकता और सामूहिकता के भावबोध को इस कदर हाशिए पर डाल दिया गया है कि व्यक्तिवाद की पूरी तरह अपनी बन आई है। व्यक्ति आज इतना आत्मकेंद्रित हो गया

सामाजिकता और सामूहिकता के भावबोध को इस कदर हाशिए पर डाल दिया गया है कि व्यक्तिवाद की पूरी तरह अपनी बन आई है। व्यक्ति आज इतना आत्मकेंद्रित हो गया है कि पारिवारिक जीवन-मूल्य तक क्षरित हो चुके हैं। पारस्परिक विश्वास को लेकर हम आज एक अजीब संशय की स्थिति में आ चुके हैं। यह संशय इतना गहरा हो गया है कि समाज-परिवार व्यक्ति आज लगभग सभी तनावग्रस्त हैं, दुविधाग्रस्त हैं, चिंताग्रस्त हैं और अवसादग्रस्त हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो हमारे आगे 'कदम-कदम पर बस चौराहे हैं' और हम हर बार ही किंकर्तव्यविमूढ़ की एक विकट और निरीह स्थिति में हैं। किंतु ऐसी ही विषय स्थितियों में साहित्य, संस्कृतिकर्म समाज के साधारणजन का समन्वय समाज को हताशा और विचलन से बचाता है। साहित्यकार अपनी कृतियों और संस्कृतिकर्म से हर तरह के वैचारिक अवसरवाद का जवाब देता है। वह निजी और संगठित रूप में जनसाधारण को शिक्षित करता और स्वयं भी उससे शिक्षित होता है।

है कि पारिवारिक जीवन-मूल्य तक क्षरित हो चुके हैं। पारस्परिक विश्वास को लेकर हम आज एक अजीब संशय की स्थिति में आ चुके हैं। यह संशय इतना गहरा हो गया है कि समाज-परिवार व्यक्ति आज लगभग सभी तनावग्रस्त हैं, दुविधाग्रस्त हैं, चिंताग्रस्त हैं और अवसादग्रस्त हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो हमारे आगे 'कदम-कदम पर बस चौराहे हैं' और हम हर बार ही किंकर्तव्यविमूढ़ की एक विकट और निरीह स्थिति में हैं।

किंतु ऐसी ही विषय स्थितियों में साहित्य, संस्कृतिकर्म समाज के साधारणजन का समन्वय समाज को हताशा और विचलन से बचाता है। साहित्यकार अपनी कृतियों और संस्कृतिकर्म से हर तरह के वैचारिक अवसरवाद का जवाब देता है। वह निजी और संगठित रूप में जनसाधारण को शिक्षित करता और स्वयं भी उससे शिक्षित होता है। यद्यपि समय और व्यापक समाज की अपनी गति, अपनी छन्नी (फिल्टर), अपने आलोड़न-विलोड़न और उद्वेलन होते हैं, लेकिन एक तार्किक साहित्यिक-सांस्कृतिक कर्म इन प्रक्रियाओं को त्वरा देता ही है और एक उज्ज्वल भविष्य की उम्मीद जलाए रखता है। कवि वीरेन डंगवाल के शब्दों में–

''तहखानों से निकले मोटे-मोटे चूहे
हैं लाशों की बदबू फैलाते घूम रहे
हैं कुतर रहे पुरखों की सारी तस्वीरें
चीं चीं चिक-चिक की धूम मचाते घूम रहे
पर डरो नहीं चूहे आखिर चूहे ही हैं
जीवन की महिमा नष्ट नहीं कर पाएंगे
आएंगे उजले दिन जरूर आएंगे।''

इस अंक से 'पाखी' के संपादन की जिम्मेदारी मुझे मिली है। 'पाखी' के संस्थापक-संपादक अपूर्व जी ने मुझ पर जो विश्वास जताया है, उस पर खरा उतरने का मेरा पूर्ण प्रयास रहेगा। पत्रिका की गुणवत्ता और समय पर प्रकाशन मेरी कसौटियां रहेंगी। चूंकि अभी नया-नया ही हूं इसलिए इस सब व्यवस्था में शुरुआत में कुछ समय लग भी जाए तो 'पाखी' के सुधी पाठकों तथा आलोचकों से सकारात्मक सहयोग तथा सुझावों की मेरी विनम्र अपील बराबर बनी रहेगी।

आगामी अंकों के लिए कुछ नई कार्य योजनाएं–

1. कुछ नए और बहसतलब स्तंभों की शुरुआत।
2. रचनाओं में उत्कृष्टता के साथ-साथ वैविध्य पर विशेष बल।
3. टॉक ऑन द टेबल' के माध्यम से नए विमर्श
4. विश्व साहित्य से बराबर महत्वपूर्ण अनुवाद।
5. पाठकों की जिज्ञासाओं के समाधान हेतु एक विशेष कॉलम–'मुखातिब'।
6. 'पाखी' को अधिकतम जनोन्मुख बनाने की दृष्टि से लेखन की नई जमीन तैयार करना।

❖❖❖